रेणु की कथा साहित्यों में भाषा सौंदर्य : एक विशेषता

प्रियंका कुमारी
शोध–छात्रा
हिन्दी विभाग
बीú आरú एú बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्रपफरपुर ;बिहारद्ध।

सार–संक्षेप :

'मैला आंचल' अपने आप में एक ऐतिहासिक कदम साबित हुआ मैला आंचल पर रेणु लिखते हैं :मैंने जो शब्दों का इस्तेमाल किया, जैसी भाषा लिखी क्या पता उसको लोग कबूल करेंगे या नही करेंगे इसलिए मैने उसे 'आंचलिक उपन्यास' कह दिया। इसके बाद आंचलिक भाषा के शब्दों का प्रयोग करने की होड़ मचने लगी परन्तु रेणु ने मात्र आंचलिक शब्दों से इसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा नहीं दी। रेणु स्वयं भाषा के साथ तथ्य व विचार को महत्त्व देते थे। आंचलिकता पर जो नई बहस, नया शिल्प तैयार हुआ उसकी शुरूआत करने का श्रेय 'रेणु' को है इसी का परिणाम है कि आंचलिक उपन्यास का नाम आते ही 'रेणु' केन्द्र में स्थापित हो जाते हैं। रेणु हर पात्र व उसकी परिस्थिति के लिए नये शब्द गढ़ते हैं, नये रंगों से उन्हें रंगाते हैं। हर पात्र की अपनी भाषा है जो उसके अस्तित्व को अभिव्यक्त करती है। रेणु आम –आदमी की बातचीत, उनके मुहावरों, लोकोक्तियों कथन भंगिमाओं का बहुत ही सटीक प्रयोग करते हैं।

शब्द कुंजी : *भाषा, आंचलिक, मुहावरे, नया शिल्प, बहस।*

भूमिका

सन् 1954 में 'मैला आंचल' अपने आप में एक ऐतिहासिक कदम साबित हुआ जब यह उपन्यास छपा तो इसे रेणु ने इस प्रकार प्रस्तुत किया यह हैं ''मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास।''[1] मैला आंचल की विशिष्ट भाषा पर रेणु लिखते हैं : जब 'मैला आंचल' मैंने लिखा और जब उसका भीतर का टाइटल छपने को जा रहा था – तब मैंने लिखा 'मैला आंचल और उसे नीचे लिख दिया 'एक आँचलिक उपन्यास'। मैंने यह सोंचकर किया कि मैंने जो शब्दों का इस्तेमाल किया, जैसी भाषा लिखी क्या पता उसको लोग कबूल करेंगे या नही करेंगे इसलिए मैने उसे 'आंचलिक उपन्यास' कह दिया।[2] इसके बाद आंचलिक भाषा के शब्दों का प्रयोग करने की होड़ मचने लगी परन्तु रेणु ने मात्र आंचलिक शब्दों से इसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा नहीं दी। रेणु स्वयं भाषा के साथ तथ्य व विचार को महत्त्व देते थे। आंचलिकता पर जो नई बहस, नया शिल्प तैयार हुआ उसकी शुरूआत करने का श्रेय 'रेणु' को है इसी का परिणाम है कि आंचलिक उपन्यास का नाम आते ही 'रेणु' केन्द्र में स्थापित हो जाते हैं। वे स्वयं लिखते भी हैं, ''राजनीति ने मुझे बहुत दिया। गाँव–गाँव में भटकाया और अपने लोगों को पहचानने का अवसर दिया।[3] इन लोगों के बीच काम करते हुए इन अंचलों के लोगों की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं को समझने, उनको अभिव्यक्त करने में मदद मिली।

रेणु की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्हें प्रेम था, अपने गाँव से, अपने अंचल से, वहाँ के लोगों से, वहाँ के गीतों से, तीज त्योहारों से। इसी प्रेम का परिणाम भी है कि ये अपने रचनाकर्म में आंचलिक शब्दों को बड़े ही प्राकृतिक रूप में प्रयुक्त कर सके। आंचलिक कथाकार जिस अनुभव, निरीक्षण व व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर अपनी रचना का निर्माण करता है वे सभी तत्व हमें रेणु के रचना कर्म से स्पष्ट दिखाई देते हैं। आंचलिक उपन्यासों, कहानियों में जिस यथार्थ की महत्ता है उस यथार्थ को स्थापित करने के लिए भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है जो कि रेणु के कृतित्व में देखने को मिलता है। रेणु की भाषा की यह विशेषता भी है कि रेणु कहीं भी अतिवादी होकर आंचलिक शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं वे हमेशा एक स्वाभाविक लय में ही इनका प्रयोग करते हैं। साथ ही साथ रेणु के शिल्प की यह विशेषता है कि ये आंचलिक शब्दों की बोधगम्यता नहीं खोने देते। रेणु की सबसे बड़ी उपलब्धि यह भी है कि इन्होंने अपने कर्म के माध्यम से विशिष्ट अंचल के लोगों, वहाँ के समुदायों, उनके जीवन, उनकी आशाओं व आकांक्षाओं को साहित्य की चिंता के रूप में चर्चा के केन्द्र में लाने का प्रयास किया। यही नहीं रेणु ने अपने साहित्यिक कर्म के प्रति अपनी ईमानदारी को हमेशा बनाये रखा। इसी का परिणाम है कि जहाँ एक ओर रेणु आंचलिक को ग्रहण करते हैं वही आवश्यकता पड़ने पर उसका अतिक्रमण भी कर जाते हैं। निर्मल वर्मा ने लिखा भी है कि – ''रेणु का स्थान यदि अपने पूर्ववर्ती और सामाजिक आंचलिक कथाकारों से अलग और विशिष्ट है तो वह इसमें है कि आंचलिक उनका सिर्फ परिवेश था, उसके भीतर बहती जीवनधारा स्वयं अपने अंचल की सीमाओं का उल्लंघन करती थी। रेणु का महत्त्व उनकी आंचलिकता में नहीं, आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है।[4]

रेणु ने जिस अंचल का निर्माण किया उसकी भाषा भी उसी के अनुरूप गढ़ी। वहाँ की भौगोलिक स्थिति, नदियाँ, पेड़–पौधे, खेती–बारी, पशु–पक्षी, एक–एक पात्र के चेहरे, लोकगीतों की धुनें सभी उसी की भाषा बोलते सुनाई पड़ते हैं। उसी अंचल के शब्दों में खुद को अभिव्यक्त करते हैं।

''गाँव से सटे, सड़क के किनारे का वह पुराना वट–वृक्ष...
सोता हुआ गाँव जब अंगड़ाई लेकर उठता तो उसकी जटाएँ हिलती डुलती रहती।''[5]

इसी भाषा का परिणाम है कि रेणु की कहानियों, उपन्यासों में अभिव्यक्त परिवेश हमारे सामने आ प्रस्तुत हो जाता है वह भी जीवंत रूप में। रेणु के साहित्य में समाज का गहरा यथार्थ है। उस समाज की संस्कृति, गीत–संगीत, मान्यताएँ, विश्वास, रहन–सहन आदि को अभिव्यक्ति मिलती है इसी भाषा से जैसे – 'चल दिदिया चल! इस मुहल्ले में लाल पान की बेगम बसती है! नहीं जानती, दोपहर–दिन और चौपहर–रात बिजली की बत्ती भक्–भक् कर जलती है!''[6]

इसी भाषा से रेणु लोक जीवन का राग–रंग हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। रेणु ने अपने रचना कर्म में जिस आंचलिक भाषा का प्रयोग किया है वह उस समय, समाज, पात्र, कथा की आवश्यकता का परिणाम है, न कि मात्र आंचलिक प्रभाव उत्पन्न करने का लक्षण। रेणु ग्रामीण जीवन की जीजिविषा, वहाँ की रागात्मकता को बहुत ही अच्छी तरह समझते हैं, वे रचे बसे है उसमें। वे उन लेखकों के प्रति तीखी प्रतिक्रिया भी देते हैं जो इस राजात्मकता को समझे बिना ही अपनी कृतियों को आंचलिकता का जामा पहनाने की कोशिश करते हैं – ''सारे हिंदी के लेखकों को इसके लिए कुछ अलग कानूनी व्यवस्था करके पकड़–पकड़ कर सबको कंस्ट्रेशन कैंप तो नहीं, सबको गाँव भेजना चाहिए, एकदम ... और ये कुछ जानते ही नहीं। धान का पेड़ होता है या पौधा होता है, यही ये नहीं जानते। मगर ये समस्याएँ उठायेंगे मजदूरों की, जिनसे इनका दूर का भी रिश्ता नहीं। लेकिन यह सब चलता है।[8] 'मैला आंचल' में आंचलिक भाषा का प्रयोग कर रेणु ने साहित्य में जो वाद–संवादों का एक विषय प्रदान किया उसे परती–परिकथा और अपनी कहानियों के माध्यम से विराम भी दिया। रेणु पर विद्यापति का भी प्रभाव है। इन दोनों की चेतना ''लोक'' से जुड़ी है। रेणु विद्यापति के गीतों को अपने उपन्यासों, कहानियों में भी प्रयुक्त करते हैं। इसी लोक को वे अपनी भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। भाषा के बारे में रेणु का मानना है कि अगर जनता की बात करनी हो तो भाषा उसके अधिकाधिक निकट होनी चाहिए। डॉ. लोठारलुन्से को दिये इंटरव्यू में रेणु बताते हैं कि ''देखिए, यो जब साधारण जनता की बात कहनी हो जब वे लोग बोलते हैं, तब जाहिर है कि अपनी गाँव की बोली में बोलते हैं, मैथिली में बोलते हैं, मगही में बोलते हैं। मुझको लिखना पड़ रहा है उसको हिंदी में। तो अगर मैं उसको शुद्ध, व्याकरण सम्मत और पंडिताऊ भाषा में लिखता हूँ तो यह खुद कान में कैसा लगेगा कि यह एक गाँव का आदमी किस तरह से बोलता है– इतना शुद्ध बोलता है। और बिल्कुल वैसा या अशुद्ध लिखने से यह उपन्यास में चल नहीं सकता है। तो बीच का कहीं एक रास्ता तैयार करना होगा। तो जो वे लोग बोलते हैं : कचहरी–वचहरी में कचहरी बोली कहते हैं उसे – कचहरी की खिचड़ी भाषा में बोली जाने से 'कचहरी बोली' मैंने इस्तेमाल किया है कई जगह इसी कचहरी बोली का। ... पुल्लिंग – स्त्रींलिंग का ख्याल उसमें नहीं होता। .... तो मैंने व्याकरण की दृष्टि से उसको सही रखा– या सही कर दिया। ... फिर उसकी जो भाव की गति है लय है बोलने की, उसको मैंने नहीं तोड़ा है। ... वह खड़ी बोली लेकिन लय उसकी अपनी है।[7] रेणु कथा की ईमानदारी को बनाये रखने का पूरा–पूरा प्रयास करते हैं। वे कहते हैं – मैंने ऐसा बीच का रास्ता अख्तियार करके लिखा–कथा की ईमानदारी तक पहुँचने के लिए भी, उसको सच्चा बनाने के लिए भी।

रेणु आम –आदमी की बातचीत, उनके मुहावरों, लोकोक्तियों कथन भंगिमाओं का बहुत ही सटीक प्रयोग करते हैं। हिरामन ने आँख की कनखियों से देखा .. उसकी सवारी ... मीता ... हीराबाई की आँखें गुजुर–गुजुर उसको हेर रही है।''[10]

रेणु की भाषा अपने व्यावहारिक पक्ष को समर्थन देती है– कि शास्त्रीय पक्ष को जो कि उनकी भाषा की वास्तविकता भी है।

रेणु हर पात्र व उसकी परिस्थिति के लिए नये शब्द गढ़ते हैं, नये रंगों से उन्हें रंगाते हैं। हर पात्र की अपनी भाषा है जो उसके अस्तित्व को अभिव्यक्त करती है। ''बाघ भी नहीं, परी, देवी, मीता, हीराबाई ... महुआ घटवारिन कोई नहीं। मरे हुए मुहुर्तों की गूंगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं। हिरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है – कंपनी की औरत की लदनी ...।''[11]

मुहावरे और लोकोक्तियों का उदाहरण –

रेणु की भाषा में सांकेतिक व व्यंजनात्मक शब्दों का ऐसा सुंदर तालमेल है कि पात्र बोलते ही सामने उपस्थित हो जाते हैं यही तो है लोक चेतना, लोक संस्कृति की झलक। रेणु ने अपनी रचनाओं में बिम्बों का जिस प्रकार प्रयोग किया है ये बिम्ब भी आंचलिकता को प्रगाढ़ करने में सहायक होते हैं। रेणु के यहाँ पात्रों की भाषा में इतनी स्वाभाविकता देखने को मिलती है कि कभी–कभी ये ठेठ देहाती पात्र भी कुछ शुद्ध खड़ी बोली के कठिन शब्द बोलने का प्रयास करते हैं, भले ही वे इसमें उलट–पुलट ही बोल देते हो। जैसा कि 'तीसरी कसम' में देखने को मिलता है – यहाँ लाल मनोहर बाबू का तेवर देखने को मिलता है – यहाँ लाल मनोहर बाबू का तेवर देखकर 'बुलबुल' को 'लुबलुब' बोल देता है।[12] एक जगह पर कहानी का नायक 'हिरामन' कहता भी है ''कचरा ही बोली या खरी बोली में दो चार सवाल चल सकता है। दिल खोलकर बात तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है। जब हिरामन के सामने यह सवाल उपस्थित हुआ है कि वह हीराबाई से जो शहर से आई है – ''तो हे'' कहकर गप करें या 'अहां' कहकर लेकिन चूंकि शहर से आई बाई जी हीराबाई को तोहे या अहां समझ में नहीं आती। इसलिए हिरामन ने उससे कचराही बोली में ही गप किया है। रेणु जी की कहानियों में शुद्ध मैथिली के काव्य भी है। जैसे अगिनखोर कहानी में बुढ़िया महरी किरकिराकर कहती है : ऊछोड़िया ''हिनार है''। फिर भी रेणु ने कहीं कहीं ठेठ मैथिली भाषा के शब्दों की व्याख्या की है। जैसे ''विदागी'' नेहर या ससुराल जाती हुई लड़की (2) ठुमरी, रेणु जी पृ. सं. – 19) लेवोना : पाड़ा खरीदने वाला

(3) (दुमरी, रेणु जी, पृ. सं. – 28 जैसे कि उटगण अर्थात् उबटन। लेकिन अधिकतर जो स्थानीय शब्द है उनके अर्थ समझ में आ जाते हैं। चौरबत्ती (टार्च) दसगजा, संवाग कोरबहू कोंची आदि। रेणु ने कई स्थानों पर इन शब्दों के साथ सुन्दर–सुन्दर विशेषण भी प्रयुक्त किये है जिससे वाक्यों में रोचकता काफी बढ़ गई है जैसे : मूलगैन कंसरी, गमकौआ जड़दा, केनूगिलासी बोली। 'बरखाबुनी' शब्द के संदर्भ में तो वे स्वयं कहते हैं कि बरखाबुनी शब्द को सुनकर मन हर्षित हुआ शायद आकाश में मंडसल वाले काले–काले बादल भी प्रसन्न हुए। नन्हीं–नन्हीं बूँदे गिरने लगी इसी लिए बरखाबुनी शब्द का प्रयोग होने लगा। आंचलिक, स्थानीय शब्दों की मंच के साथ ही साथ रेणु ने अपनी रचनाओं में उर्दू, अंग्रेजी, बंगाली शब्दों का भी इस्तेमाल किया है। वे खुद कहते हैं कि भाषा चौपट न हो जाए इसलिए मैंने ग्रामर ठीक रखी। बंगला भाषा का प्रयोग हमें, कई स्थानों पर मिल जाता है। रेणु ने जहाँ बंगला भाषा के पूरे वाक्यों का इस्तेमाल किया है वहाँ बोलचाल के अंदर ही उसका अनुवाद भी दे दिया है। जैसे– 'कीनातनी? मने की वाज दे? क्यों क्या बज रहा है मन में। परन्तु कहीं कहीं बिना अर्थ बताये ही वाक्य प्रयुक्त किये हैं जैसे ''मीछे मीछे झगड़ा करे कि लाभ? इस प्रकार रेणु ने भाषा के मामले में कई नये–नये प्रयोग किये लेकिन वे कहीं भी बेवजह इन शब्दों का प्रयोग नहीं करते। वे कई भाषाओं का प्रयोग करते हैं लेकिन वह भी पूरी तरह सहज व वांछित स्थान पर। उर्दू के पूरे–पूरे वाक्य हमें इनकी कहानियों में देखने को मिलते हैं। 'जलवा' कहानी में इसका उदाहरण देखा जा सकता है। ''फिरका परस्त अजदहों सारी कोम को लील लिया। कितनी मधुरता लिए हुए शब्द हैं लेकिन इनके भीतर गहरे अर्थ भी छिपे हैं। कई उर्दू शब्दों का इस्तेमाल इन कहानियों में हुआ है। जैसे– –नफरत आमेज', 'मुगलता अजीज। बरकंदाज, मुर्ग मुशलम, बादशाह आदि शब्दों की भरमार भी इनकी कहानियों में देखने को मिलती है। जैसे – लोटिस उलेवर, ड्रामा, ये सब ठेठ ग्रामीण अनपढ़ लोगों के बीच प्रचलित शब्द हैं और इसी प्रकार पढ़े–लिखे पात्रों के बीच ये शब्द प्रचलित है : वेलकम, बलगर, बल्यू फिल्म आदि। यहाँ कई विशेषकों का भी प्रयोग किया गया है जैसे – स्पाइशट, अनरजेटिक, स्वीटी सौफ्टी आदि। कहीं कहीं तो पूरे के पूरे वाक्य ही अंग्रेजी के प्रयुक्त किये गये हैं, जैसे – प्लीज किल मी। इस प्रकार रेणु कई जगहों पर, वाक्यों में इन भाषाओं का प्रयोग करते हैं लेकिन वे इन शब्दों के अनावश्यक प्रयोग पर व्यंग्य करने से भी नहीं चूकते। चूंकि संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी है और अनेक शब्द भारतीय भाषाओं में तत्सम रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। परन्तु फिर भी रेणु इन तत्सम् शब्दों के निरर्थक प्रयोग पर व्यंग्य करते हैं, ''जवायी बाबू को विशुद्ध बोलने का मुद्रा दोष है।' अशुद्धी विशुद्ध – संकुचित मुख्य मुद्राएँ हैं।[13]

भाषा :– रेणु के कथा साहित्य में भाषा को एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। रेणु के कथा शिल्प के बारे मे डॉ0 जवाहर सिंह लिखते हैं : ''रेणु के उपन्यासों का इतना व्यापक प्रसार और अभिनंदन महज इसलिए नहीं हुआ था कि इनमें देश के अंचलों की कुंआरी मिट्टी की सोंधी गंध थी, ग्रामीण संस्कृति की बहुरंगी झांकिया थी, लोकगीतों की मोहक गूंज थी। लोक जीवन और ग्रामीण प्रकृति के अछूते बिंब थे या देश की स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न राजनीतिक पार्टियों तथा स्वार्थलोलुप राजनीतिक खिलाड़ियों के बेनकाब घिनौने चेहरे थे अथवा नवस्वत्व के निर्माण के लिए संघर्षशील आम आदमी के बोलते – बिखरते सपनों के यथार्थ चित्र थे, ये सब तो उनमें थे ही और बड़े व्यापक रूप में थे, लेकिन इन उपन्यासों की सफलता, महत्ता और आकर्षण का एक और भी प्रमुख कारण था और वह था इनका बिल्कुल नया, ताजा और अनूठा शिल्प – एक नयी अदाकारी।[14]

रेणु के कथा साहित्य की भाषिक संरचना इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यह भाषिक संरचना काफी अलग या यूं कहें उच्च कोटि की है। रेणु ने चली आ रही घिसी–पिटी परम्परागत साहित्यिक भाषा से लोहा लेने का काम भी किया और सफल भी हुए। भाषा के इस अभिजात्य स्वरूप से विद्रोह और एक लोकधर्मी निजी भाषा का निर्माण उसमें श्रवन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, जीवन संदर्भो के प्रति नवीन दृष्टि व चेतना लाने का महत्वपूर्ण कार्य रेणु ने किया है। रेणु ने भाषा के असीम भंडार को खोजा जिसमें लोकगीत, लोक ध्वनियाँ, लोकोक्तियों, जनपदीय शब्द अपनी आभा बिखेर रहे थे। रेणु का उद्देश्य ग्रामीण संवेदना की अभिव्यक्ति है। इसके संघर्षों, अनुभवों और मानवीय संबंधों के यथार्थ को दर्शाना है। इसकी जीवन्त अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक था कि रेणु जीवन्त भाषा का ही प्रयोग करे। यही जीवंत भाषा रेणु ने प्रयुक्त की उस अंचल के शब्दों, लोकोक्तियों, गीतों का प्रयोग करके। यह रेणु की रचनाशीलता का ही परिणाम है कि उन्होंने ग्रामीण जीवन के यथार्थ व भाषा में संतुलित संबंध स्थापित कर अभिव्यक्त किया। ग्रामीण जीवन की इतनी प्रामाणिक अभिव्यक्ति गैर आंचलिक भाषा में असंभव थी और करने का प्रयास भी किया जाए तो उसमें कृत्रिमता आ ही जाएगी। रेणु की भाषा शैली के बारे में डॉ0 मैनेजर पांडेय ने लिखा है : 'रेणु' बोलचाल की भाषा के मिजाज और उसकी ताकत को पहचानते हैं इसलिए बोलचाल की भाषा के मुहावरे अंदाजेबयां और कभी–कभी पूरे वाक्य को कहानी में इस तरह लाते हैं कि भाषा के मिजाज के साथ बोलने वालों का मिजाज और बोलने के ढ़ंग के साथ सोचने का ढंग भी प्रकट हो जाता है कि वे मैथिली, मगही और भोजपुरी के शब्दों, मुहावरों और वाक्यों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं, जन–जीवन के यथार्थ और अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए करते हैं।[15]

यदि साहित्य की सही परख की जाए तो उसमें लेखक के गुढ़ अनुभव, मानवीय संवेदना ही प्राप्त होंगे और ये अनुभव उसके इंद्रिय बोध, सौन्दर्य बोध और भावबोध की ही उपज होते हैं। इन्हीं के अनुरूप हमारी भाषा विकसित होती है जैसे : 'हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आइने में अपने दांत देख रही है। ..... मदनपुर मेले में एक बार बेलों को नन्हीं–नन्हीं कौड़ियों की माला खरीद दी थी हिरामन ने। छोटी–मोटी नन्हीं–नन्हीं कौड़ियों की पांत। यही है अनुभवों से उपजी भाषा, उसके प्रतीक। यहाँ हिरामन दांतों की तुलना कौड़ियों से कर रहा है जो कि रचनाकार के आंचलिक परिवेश की गहरी समझ को अभिव्यक्त करता है। रेणु

अपने पात्रों के हर एक क्रियाकलाप के साथ रहते है। वे विश्लेषण के बाद उसके बारे में क्रिया–प्रतिक्रिया देते हैं। जैसे ही पात्र क्रियाशील होते हैं वे स्वयं (रेणु) हट जाते है फिर संवाद चलता है पात्रों के बीच, उनकी अपनी भाषा में। इस भाषा में दिल खोलकर जो बातचीत होती है उसमें कोई गल्प या गप की संभावना भी नहीं रहती इसमें जो बात होती है वह ग्रामीण लोगों के दिल की धड़कन की सच्चाई होती है। दिल की धड़कन की इस सच्चाई का अहसास हमें रेणु की भाषा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसी कारण रेणु अपनी भाषा में इतने प्रयोग कर पाये जैसे : ''सचमुच प्यारू डॉक्टर का पुराना नौकर है। टेबिल कुर्सी ठीक से लगा दिया है – सीढ़ी में ही लगी हुई गोल कड़ी में ललमुनियां का कठौता बिठा दिया है। ढ़ोल में कल लगा हुआ। कल से पानी गिरने लगता है – खस्सी बकरी की अँतड़ी का भीतरी हिस्सा जैसा रोयांदार होता है, वैसा ही गमछा है– अरे, कपड़े, धोने वाला नहीं, गमकौआ साबुन चाहिए। इसी प्रकार दो ग्रामीण औरतों के बीच में झगड़े का प्रसंग देखें : ''अरे, हां–हां, बेटा–बेटी के करो, चौठारी करे मगरो। चालनी कहे सुई से कि मेरी पेंदी में छेद। हाथ में कंगना तो चमका रही हो, खलासी को एक पुड़िया सिंदूर नहीं जुटता है। ''मुँह संभाल कर बात कर नेगड़ी। बात बिगड़ जाएगी। खलासी हमारा बहन–बेटा है। बहन–बेटा लगाकर गाली देती है। गाली हमारी देह में नहीं लगेगी। अपने खास भतीजा तेतरा के साथ भागी तू और गाली देती है हमको गुअर टोली के कौन नहीं जानता। तू बात करेगी हमसे। ''रे सिंधवा की रखेली। सिंधवा के बगान का बंबे आम का स्वाद भूल गई। तरबन्ना में रात–रात भर लुका चोरी में ही खेलती थी रे कुर अंखा बच्चा जब हुआ था, तो कुर अंखा सिधवा से मुँह देखोनी में बाछी मिली थी, सो कौन नहीं जानता। यहाँ लेखक की स्वयं की भाषा में और इन ग्रामीणों की भाषा में कोई अंतर नहीं है। इस भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषता है भावाव्यक्ति की क्षमता। यह ग्रामीण चेतना, संवेदना, यथार्थ बोध क्या इस भाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली शुद्ध साहित्यिक भाषा में संभव है? कथाकार व ग्रामीण के बीच भाषा का अंतर नहीं होने के पीछे एक कारण यह भी है कि रेणु की मानसिकता व बोध ग्रामीण व आंचलिक पात्रों का दूर से निरीक्षण करके उत्पन्न नहीं हुआ है बल्कि ये इन पात्रों के बीच रचे–बसे हैं, इनको जिया है इसलिए यह स्वाभाविकता इनकी भाषा में देखने को मिलती है। अंचल का जीवन, रीति–रिवाज, ताजगी, सच्चाई ये सभी ठेठ शब्दों के बिना अभिव्यक्त कर पाना असंभव है वह भी बिना किसी कृत्रिमता के। ''रेणु ने अपने उपन्यासों और कहानियों में इन ठेठ शब्दों का बहुत ही उम्दा इस्तेमाल किया। डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं : ''रेणु का शब्दों पर विशेष अधिकार है। ध्वनियों को पकड़ने की अपनी अद्‌भुत क्षमता के बावजूद वे बड़ी संख्या में लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। तत्सम शब्दों में नागर अर्थ–अभिव्यक्ति की क्षमता है जबकि तद्‌भव और देशज शब्द ग्राम जीवन को अधिक सूक्ष्मता एवं गहराई से व्यक्त करते हैं। ग्रामीण और अशिक्षित पात्रों द्वारा तद्‌भव शब्दों के प्रयोग की परम्परा है। लेकिन ''रेणु'' ठेठ शब्दों के साथ–साथ श्रवन्यात्मकता भी पकड़ते हैं। ''रेणु'' के पास तो ध्वनि–यंत्र है जिसके माध्यम से उन्होंने इस अंचल की गायों की आवाज, पेड़–पत्तों के हिलने की ध्वनि, नाक सिड़कने और छींकने की आवाजें, हंसुलियों और झांझनों के बजने, कंगनों की खनक तक मूर्त कर दी है।[28] रेणु की समझ इतनी गहरी है कि वे शहर और ग्रामीण भाषाओं की भिन्नता को भी व्यक्त करते हैं : ''मैला आंचल'' का डॉ0 प्रशान्त पटना की लेडी डॉक्टर ममता को पत्र में लिखता है ''तुम जो भाषा बोलती हो, उसे ये नहीं समझ सकते। तुम इनकी भाषा नहीं समझ सकती। तुम जो खाती हो, ये नहीं खा सकते। तुम जो पहनती हो, ये नहीं पहन सकते। तुम कैसे सोती हो, बैठती हो, हँसती हो, बोलती हो, ये वैसा कुछ नहीं कर सकते। इनके यहाँ अंग्रेजी शब्द भी परिवर्तित होकर कान में आये हैं, जैसे : सर्वे सितलमंटी – सर्वे सेटलमेंट, मिम्बर, ठेठर कंपनी– थियेटर कंपनी, मुस्लिम लोग, सुशलिष्ट पार्टी – सोशलिस्ट पार्टी, केन–फाइन, रिजरव–रिजर्व, भे सचरमन–वाइस चेयरमैन, इसपिताल–हॉस्पीटल, इसपारमिन–ऐक्सपेरिमेंट, होल इंडिया– आल इंडिया आदि। संस्कृत, फारसी के शब्द भी बदल जाते है : सोआरथ – स्वार्थ, कनिया–कन्या, जोतखी–ज्योतिषी, गन्हीजी–गाँधीजी, जैहल–जेल, लोजभान–नौजवान आदि। इस पर डॉ0 जवाहर सिंह लिखते है : ''लोकमानस और लोकचेना की सफल और ईमानदार अभिव्यक्ति लोकभाषा के माध्यम से ही हो सकती है। अछूते अंचलों के बहुआयामी जीवन–संदर्भों की संश्लिष्ट और सतरंगी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में अभिजात साहित्यिक भाषा को अक्षम पाकर ही 'रेणु' को जनभाषा का दामन पकड़ना पड़ा था। जनभाषा के शब्दों की असीम अर्थवता, मुहावरों के गहरे अर्थ–संकेत, लोकोक्तियों तथा कहावतों की गंभीर व्यंजकता तथा संप्रेषणीयता और लोकगीतों की संगीतात्मकता एवं ध्वनि बिम्बों की श्रवन्यात्मकता से समन्वित 'रेणु' की अभिनव भाषा–संरचना संपूर्ण हिन्दी साहित्य में अपनी तरह की अकेली है। रेणु की भाषा की विशेषताओं के साथ ही साथ इनकी भाषा की सीमाओं पर बात करना भी आवश्यक है : रेणु ने बिहार के अंचलों को अपने कथा साहित्य का विषय बनाया है। इस क्षेत्र में अनुवांसिकता एक प्रमुख विशेषता है। परन्तु रेणु की भाषा में गैर अनुवांसिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं पर एक साथ दो–दो कहावतों को एक साथ प्रयुक्त किया है जैसे – (1) बेटा–बेटी केकरी, घीढारी करे मगरो। (2) चलनी कहे सूई से कि तेरी पेंदी में छेद। इन सीमाओं के बावजूद भी रेणु ने भाषा में कई प्रयोग किये हैं लेकिन इनकी रचनाओं का यथार्थ मात्र भाषा से अभिव्यक्त नहीं होता बल्कि उनके गहरे संवेदनात्मक जुड़ाव से अभिव्यक्त होता है। भाषा का प्रयोग वे केवल माध्यम या वाहन के रूप में करते है साध्य या गन्तव्य के रूप में नहीं।

संदर्भ :–

[1], रेणु रचनावली भाग–2 ''मैला आँचल की भूमिका, पृ0 22

[2], रेणु रचनावली भाग–2 लोगर लुन्से को दिए साक्षात्कार में पृ0–442

ख3, रेणु रचनावली भाग–5, पृ0 243
ख4, निर्मल वर्मा– कला का जोखिम, पृ0 63
ख5, रेणु रचनावली; भाग–1, सं. भारत यायावर, पृ0 22
ख6, रेणु रचनावली, सं. भारत यायावर, पृ.–165
ख7, रेणु रचनावली; भाग–4, पृ0 441
ख8, रेणु रचनावली भाग–4, पृ0 441
ख9, रेणु रचनावली भाग–4, पृ0 388
ख10, रेणु रचनावली, सं0 भारत–यायावर, पृ0 163
ख11, ठुमरी, रेणु पृ0 संख्या–139
ख12, आदिम रात्रि की महक; फणीश्वरनाथ रेणु पृ0 सं0–46
ख13, अग्निखोर, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. सं. – 19
ख14, डॉ0 मैनजर पांडेय का लेख : रेणु की कहानियाँ : मानवीयता की तलाश का कलात्मक प्रयास, पृ. 19
ख15, डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक कहानी का परिपार्श्व पृ0–145